



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

रुद्रयामल उत्तरतन्त्र में हठयोग के तत्त्वः हठयोगप्रदीपिका के विशेष सन्दर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन

योगेन्द्र कुमार, शोधार्थी, प्रो. डॉ. मधुसूदन पेन्ना, शोध-निर्देशक

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति संकाय

कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक, नागपुर, महाराष्ट्र, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य रुद्रयामल उत्तरतन्त्र में निहित हठयोगपरक तत्त्वों की पहचान करके उनका हठयोगप्रदीपिका के विशेष सन्दर्भ में तुलनात्मक विवेचन करना है। अध्ययन का प्राथमिक आधार आचार्य श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित रुद्रयामलम् (उत्तरतन्त्रम्), प्रथम भाग तथा स्वात्मारामकृत हठप्रदीपिका का प्रचलित चतुरपदेशात्मक पाठ है। पाठपरक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायाम, नाड़ी-तन्त्र, कुण्डलिनी, मुद्रा, सिद्धि, समाधि और मोक्ष से सम्बन्धित अंशों का परीक्षण किया गया है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि रुद्रयामल उत्तरतन्त्र योग को पृथक् शारीरिक अनुशासन न मानकर मन्त्र, देवता, चक्र, जप, ध्यान और शक्ति-साधना से संयुक्त तान्त्रिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके तेईसवें से पच्चीसवें पटल में आसनों की संख्या और प्रयोजन, द्वादश यम, चतुर्दश नियम, पूरक-कुम्भक-रेचक, इडा-पिङ्गला-सुषुम्ना, षट्चक्र तथा कुण्डलिनी-जागरण का सुसम्बद्ध विवरण मिलता है। दूसरी ओर हठयोगप्रदीपिका समान साधनात्मक सामग्री को आसन, प्राणायाम, मुद्रा और समाधि के चार उपदेशों में अधिक संक्षिप्त एवं क्रमबद्ध रूप देती है और हठविद्या को राजयोग की प्राप्ति का सोपान मानती है। दोनों ग्रन्थों की शब्दावली और साधना-रचना में उल्लेखनीय साम्य है, विशेषतः यम-नियम, आसन द्वारा वायु-साधन, नाड़ीशोधन तथा कुण्डलिनी-बोध में; तथापि रुद्रयामल में मन्त्रात्मक और देवतामय व्याख्या अधिक प्रबल है। पाठ-काल और उपलब्ध संस्करणों की अनिश्चितता के कारण यह अध्ययन प्रत्यक्ष प्रभाव का दावा न करके साझा योग-तान्त्रिक साधना-परम्परा, पाठगत साम्य और प्रणालीगत भिन्नता को रेखांकित करता है।

बीज-शब्द: रुद्रयामल उत्तरतन्त्र; हठप्रदीपिका; हठयोग; आसन; प्राणायाम; नाड़ी; कुण्डलिनी; सिद्धि; मोक्ष।

1. प्रस्तावना

भारतीय योग-परम्परा किसी एक ग्रन्थ, सम्प्रदाय अथवा साधना-पद्धति तक सीमित नहीं रही। वैदिक-उपनिषदिक तप, श्रमण परम्पराओं का ध्यान, पातञ्जल अष्टाङ्गयोग, शैव-शाक्त तन्त्रों का मन्त्र और सूक्ष्म-शरीर-विज्ञान तथा मध्यकालीन हठयोग की देह एवं प्राण-केंद्रित विधियाँ परस्पर सम्पर्क में विकसित हुईं। इस ऐतिहासिक बहुलता के कारण आधुनिक अर्थ में योग को केवल आसन या स्वास्थ्य-व्यायाम मानना उसके पूर्व-आधुनिक प्रयोजनों को संकुचित कर देता है। हठयोग-साहित्य में आरोग्य और देहस्थैर्य महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु उनका व्यापक लक्ष्य प्राण का नियन्त्रण, सुषुम्ना का उद्घाटन, मनोलय, सिद्धि और अन्ततः मोक्ष है (Mallinson, 2011, pp. 770-781; Mallinson and Singleton, 2017)।

‘हठ’ की लोकप्रिय व्याख्या प्रायः ‘ह’ को सूर्य और ‘ठ’ को चन्द्र मानकर दोनों के योग के रूप में की जाती है। Jason Birch ने आरम्भिक हठयोग-साहित्य के आधार पर दिखाया है कि यह व्युत्पत्ति समस्त प्राचीन हठयोग-पाठों में समान रूप से उपस्थित नहीं है; ‘हठ’ का अर्थ बलपूर्वक अथवा कठिन साधना भी रहा और बाद के ग्रन्थों ने इसे विभिन्न प्रतीकात्मक अर्थों से जोड़ा (Birch, 2011, pp. 527-554)। इसी अध्ययन में Birch ने यह भी इंगित किया कि शैव तन्त्रों

में 'हठयोग' पद अपेक्षाकृत देर से दिखाई देता है और *रुद्रयामल उत्तरतन्त्र* जैसे पाठ इस ऐतिहासिक प्रश्न के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं। फलतः रुद्रयामल की योग-सामग्री का अध्ययन केवल किसी तान्त्रिक ग्रन्थ में आसनों की खोज नहीं, बल्कि तन्त्र और हठयोग की परस्परता को समझने का माध्यम है।

हठप्रदीपिका या प्रचलित नाम से *हठयोगप्रदीपिका* स्वात्माराम द्वारा संकलित वह प्रभावशाली ग्रन्थ है जिसने पूर्ववर्ती अनेक योग-विधियों को चार उपदेशों—आसन, प्राणायाम, मुद्रा और समाधि—में संयोजित किया। नवीन पाण्डुलिपि-अनुसन्धान इसे लगभग 1400 ई. के आसपास की रचना मानता है और इसके दो सौ से अधिक पाण्डुलिपि-साक्ष्यों के आधार पर पाठ-परम्परा की विविधता सामने आई है (Mallinson et al., 2024)। स्वयं ग्रन्थ हठविद्या को राजयोग के आरोहण की सीढ़ी बताता है और स्पष्ट करता है कि उसका उपदेश "केवल राजयोगाय" है (*हठप्रदीपिका* 1.1-2)।

रुद्रयामल उत्तरतन्त्र का उपलब्ध मुद्रित पाठ बहुत विस्तृत और बहुविषयक है। इसमें मन्त्र, दीक्षा, कुलाचार, देवता-साधना, षट्चक्र, स्वर, प्राण, आसन और योगसिद्धि के अंश एक ही धार्मिक-साधनात्मक संसार में आते हैं। श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित संस्करण की प्रस्तावना यह स्वीकार करती है कि जीवनन्द के 1892 ई. के मुद्रित संस्करण और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के संस्करण के पटल तथा श्लोक-संख्या में पर्याप्त अन्तर है (त्रिपाठी, 1991, प्रस्तावना)। अतः रुद्रयामल को एक निर्विवाद, एकरूप और निश्चित काल के पाठ के रूप में ग्रहण करना पद्धतिगत रूप से उचित नहीं होगा। प्रस्तुत लेख इसी सावधानी के साथ प्रथम भाग के तेईसवें, चौबीसवें और पच्चीसवें पटलों में उपलब्ध योग-सामग्री को अपना मुख्य क्षेत्र बनाता है।

2. शोध-समस्या, उद्देश्य एवं परिकल्पना

हठयोग के इतिहास पर आधुनिक अध्ययनों ने *अमृतसिद्धि*, *दत्तात्रेययोगशास्त्र*, *गोरक्षशतक*, *विवेकमार्तण्ड* और *हठप्रदीपिका* जैसे ग्रन्थों की तकनीकों एवं पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है (Mallinson and Szántó, 2021; Singleton, 2020)। इसके विपरीत हिन्दी में उपलब्ध रुद्रयामल-विषयक विवेचन प्रायः वर्णनात्मक, साधनापरक अथवा श्रद्धामूलक है। योग-विषयक श्लोकों को *हठप्रदीपिका* की संरचना से क्रमशः मिलाकर देखने, समान शब्दावली की सीमा निर्धारित करने और दोनों की भिन्न धार्मिक व्याख्याओं को स्पष्ट करने की आवश्यकता बनी हुई है।

इस शोध की मुख्य समस्या यह है कि रुद्रयामल में उपस्थित आसन, प्राणायाम, नाड़ी और कुण्डलिनी सम्बन्धी तत्त्वों को किस अर्थ में 'हठयोगपरक' कहा जा सकता है। क्या केवल समान तकनीकी शब्दावली प्रत्यक्ष ग्रन्थगत प्रभाव सिद्ध करती है? क्या दोनों ग्रन्थों का साध्य समान है? क्या रुद्रयामल का मन्त्र-देवता-आधारित ढाँचा *हठप्रदीपिका* के अपेक्षाकृत तकनीकी क्रम से भिन्न योग-दृष्टि प्रस्तुत करता है? इन्हीं प्रश्नों के आधार पर शोध के उद्देश्य हैं: (1) रुद्रयामल में हठयोग-सदृश तत्त्वों की पाठगत पहचान; (2) उनका *हठप्रदीपिका* से तुलनात्मक विश्लेषण; (3) समानता और भिन्नता के दार्शनिक आशय की व्याख्या; तथा (4) प्रत्यक्ष प्रभाव और साझा साधना-भण्डार के बीच पद्धतिगत भेद स्पष्ट करना।

कार्य-परिकल्पना यह है कि *रुद्रयामल उत्तरतन्त्र* और *हठप्रदीपिका* एक ऐसे साझा योग-तान्त्रिक साधना-भण्डार से सम्बन्धित हैं जिसमें देहस्थैर्य, प्राण-नियमन, मध्य-नाड़ी, कुण्डलिनी और मनोलाय परस्पर जुड़े हैं। फिर भी रुद्रयामल इस सामग्री को मन्त्र, देवता और चक्र-पूजा से अभिन्न बनाता है, जबकि *हठप्रदीपिका* उसे राजयोग-प्राप्ति के लिए अपेक्षाकृत सुव्यवस्थित क्रियात्मक प्रणाली में रूपान्तरित करती है।

3. पूर्ववर्ती शोध का संक्षिप्त अवलोकन

हठयोग के इतिहास की आधुनिक समझ में James Mallinson और Jason Birch के पाठालोचनात्मक अध्ययनों का विशेष योगदान है। Mallinson ने हठयोग को ऐसी योग-पद्धतियों का व्यापक नाम माना है जिनमें शरीर और प्राण पर प्रत्यक्ष कार्य करने वाली विधियाँ प्रधान हैं; उनके अनुसार आरम्भिक परम्पराओं में बिन्दु-संरक्षण, प्राण-नियमन और बाद में कुण्डलिनी-उत्थान के मॉडल परस्पर जुड़े (Mallinson, 2011a)। Birch ने 'हठ' पद की व्युत्पत्ति और प्रयोग का परीक्षण करके चेताया कि सूर्य-चन्द्र की लोकप्रिय व्याख्या को प्रत्येक आरम्भिक पाठ पर आरोपित नहीं किया जा सकता। उनका निष्कर्ष रुद्रयामल के अध्ययन के लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि किसी ग्रन्थ में इड़ा-पिङ्गला अथवा सूर्य-चन्द्र का उल्लेख अपने-आप 'ह' और 'ठ' की व्युत्पत्ति प्रमाणित नहीं करता (Birch, 2011)।

Mallinson और Singleton द्वारा सम्पादित *Roots of Yoga* ने अनेक संस्कृत तथा अन्य भाषायी स्रोतों को आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, योगिक शरीर और मुक्ति जैसे विषयों के अनुसार एकत्र कर यह दिखाया कि योग की ऐतिहासिक परम्पराएँ बहुविध रही हैं (Mallinson and Singleton, 2017)। Singleton का 'Early Hāṭhayoga' अध्याय पाठालोचन को हठयोग-अध्ययन की मूल पद्धति मानते हुए इस बात पर बल देता है कि प्रसिद्ध मुद्रित पाठ किसी ग्रन्थ की सम्पूर्ण

पाण्डुलिपि-परम्परा का प्रतिनिधित्व नहीं करते (Singleton, 2020)। यही सावधानी रुद्रयामल पर और भी आवश्यक है, क्योंकि उसके नाम से सम्बद्ध पाठ-सामग्री में पर्याप्त वैविध्य है।

तन्त्र और कुण्डलिनी पर Flood, White और Saraogi के अध्ययन बताते हैं कि तान्त्रिक शरीर केवल भौतिक शरीर का दार्शनिक नाम नहीं, बल्कि मन्त्र, देवता, नाड़ी, चक्र और अनुष्ठान से निर्मित साधनात्मक मानचित्र है (White, 1996; Flood, 2006; Saraogi, 2020)। हठयोग के विकास में शाक्त तत्त्वों की भूमिका पर Mallinson ने यह प्रतिपादित किया कि कुण्डलिनी-आधारित योग ने पूर्ववर्ती बिन्दु-केंद्रित विधियों के साथ मिलकर हठयोग को नया धार्मिक और शारीरिक विन्यास दिया (Mallinson, 2016)। इन अध्ययनों से प्रस्तुत लेख को दो आधार मिलते हैं: पहला, समान तकनीकी शब्दों की ऐतिहासिक जाँच; और दूसरा, प्रत्येक ग्रन्थ की अपनी धार्मिक संरचना को सुरक्षित रखते हुए तुलना।

उपलब्ध शोध में रुद्रयामल का उल्लेख हठयोग-पद, कुण्डलिनी, शक्ति-साधना या तान्त्रिक ग्रन्थ-सूची के प्रसंग में मिलता है, पर उसके तेईसवें से पच्चीसवें पटल के श्लोकों को हठप्रदीपिका के यम-नियम, आसन और प्राणायाम-क्रम के साथ व्यवस्थित रूप से रखकर हिन्दी में किया गया अध्ययन सीमित है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी विशिष्ट रिक्ति को सम्बोधित करता है। इसकी मौलिकता किसी नये ऐतिहासिक दावे में नहीं, बल्कि प्रमाणित श्लोक-सन्दर्भों के आधार पर तुलनात्मक वर्गीकरण और सावधान व्याख्या में है।

4. स्रोत, सीमा एवं शोध-पद्धति

अध्ययन का मूल रुद्रयामल-पाठ *योगतन्त्र-ग्रन्थमाला*, सप्तम पुष्प के रूप में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित आचार्य श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी-सम्पादित द्वितीय संस्करण (1991) है। तुलना के लिए *हठप्रदीपिका* का प्रचलित चार-उपदेशीय पाठ और नवीन डिजिटल आलोचनात्मक संस्करण का पाठ-परिप्रेक्ष्य उपयोग किया गया है। श्लोक-संख्या प्रचलित चार-उपदेशीय पाठ के अनुसार दी गई है; जहाँ रुद्रयामल के मुद्रित पृष्ठ आवश्यक हैं, वहाँ पटल, श्लोक और पृष्ठ तीनों का उल्लेख किया गया है।

- प्रथम अवस्था में रुद्रयामल के योग-विषयक श्लोकों को निम्न वर्गों में रखा गया: (क) अनुशासन और साधक-पात्रता, (ख) आसन, (ग) प्राणायाम एवं नाड़ी, (घ) कुण्डलिनी और चक्र, (ङ) मुद्रा एवं आन्तरिक क्रिया, और (च) सिद्धि, ध्यान, समाधि एवं मोक्ष।
- दूसरी अवस्था में हठप्रदीपिका से समान विषयों के पाठ चुने गए।
- तीसरी अवस्था में शब्दगत साम्य, क्रिया-क्रम, साधनात्मक प्रयोजन और धार्मिक व्याख्या—इन चार मानकों पर तुलना की गई।

यह अध्ययन किसी योग-क्रिया की आधुनिक चिकित्सीय प्रभावशीलता की परीक्षा नहीं करता और न ही तान्त्रिक सिद्धियों को प्रयोगशाला में प्रमाणित तथ्य घोषित करता है। 'सिद्धि', 'अमरता', 'रोगनाश' अथवा 'कालवञ्चना' जैसे पदों को उनके ग्रन्थीय, धार्मिक और साधनात्मक अर्थ में पढ़ा गया है। इसी प्रकार ग्रन्थों की तिथि अनिश्चित होने पर एक पाठ को दूसरे का स्रोत घोषित नहीं किया गया है। यह सीमा शोध को अतिशयोक्ति से बचाकर पाठ-साक्ष्य पर केन्द्रित रखती है।

5. रुद्रयामल उत्तरतन्त्र और हठप्रदीपिका का साधनात्मक विन्यास

रुद्रयामल के चौबीसवें पटल के उपसंहार में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रम दिखाई देता है। पाठ यम से ज्ञान, नियम से पूजा, आसन से दीर्घजीवन, प्राणायाम से प्राण-निरोध, प्रत्याहार से चित्त-नियमन, धारणा से वायु-सिद्धि, ध्यान से मोक्ष और समाधि से महाज्ञान की प्राप्ति को सम्बद्ध करता है (*रुद्रयामल उत्तरतन्त्र* 24.132-145)। यह क्रम पातञ्जल अष्टाङ्ग के नामों का स्मरण कराता है, किन्तु उसके फल-विन्यास में तान्त्रिक सिद्धि, पूजा, सहस्रार और श्रीविद्या-ध्यान समाहित हैं। अतः यहाँ अष्टाङ्ग एक शुद्ध पातञ्जल प्रतिरूप न होकर तान्त्रिक रूपान्तरण है।

हठप्रदीपिका का बाह्य संगठन अष्टाङ्ग के बजाय चार उपदेशों का है। प्रथम उपदेश साधना-स्थान, बाधक-साधक तत्त्व, यम-नियम, आसन और मिताहार; द्वितीय प्राणायाम तथा षट्कर्म; तृतीय कुण्डलिनी, मुद्रा और बन्ध; तथा चतुर्थ समाधि और नादानुसन्धान प्रस्तुत करता है। आरम्भिक श्लोक इसे राजयोग की सीढ़ी कहते हैं, जबकि द्वितीय उपदेश हठ और राजयोग को परस्पर आश्रित बताता है (*हठप्रदीपिका* 1.1-2; 2.75-77)। इस प्रकार दोनों ग्रन्थ बहिरङ्ग से अन्तरङ्ग की गति स्वीकार करते हैं, पर रुद्रयामल का धार्मिक परिवेश मन्त्र-पूजा-भक्ति से परिपूर्ण और हठप्रदीपिका का संगठन अभ्यास-केंद्रित है।

5.1 यम-नियम: नैतिक अनुशासन और तान्त्रिक विस्तार

रुद्रयामल के पच्चीसवें पटल में योगारम्भ से पूर्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय का निर्देश है। उसके बाद द्वादश यमों का पद्यात्मक निरूपण मिलता है:

**अहिंसनं सत्यसुवाक्यसुप्रियमस्तेयभावं कुरुते वसिष्ठवत्।
सुब्रह्मचर्यं सुदृढार्जवं सदा क्षमाधृतिं सेवसूक्ष्मवायुनः॥
तथा मिताहारमसंशयं मनः शौचं प्रपञ्चार्थविवर्जनं प्रभो॥**

(रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.23-24)

इस पाठ में अहिंसा, सत्य/प्रियवचन, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार, असंशय-मन, शौच और प्रपञ्चार्थ-विवर्जन जैसे तत्त्व आते हैं। श्लोक 25 द्वादश संख्या की पुष्टि करता है, यद्यपि समासयुक्त पदों के कारण आधुनिक सूचीकरण में विभाजन के प्रति सावधानी आवश्यक है। इसके बाद तप, सन्तोष, मनःस्थिरता, आस्तिक्य, दान/द्विजपूजन, देवार्चन, सिद्धान्त-श्रवण, ही, मति, जप, होम, तर्पण, सेवा और भावनात्मक चेष्टा को चतुर्दश नियम कहा गया है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.26-27; p. 254)।

हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में दस यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार और शौच—तथा दस नियम—तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्तवाक्यश्रवण, ही, मति, जप और हुत—गिनाए गए हैं (हठप्रदीपिका 1.17-18)। दोनों सूचियों में केवल विषयगत नहीं, शब्दगत साम्य भी है। अहिंसा से शौच तक की श्रृंखला तथा तप से हुत तक नियमों का क्रम एक निकट पाठ-परम्परा की ओर संकेत करता है। रुद्रयामल में सूची विस्तृत होकर मनःस्थिरता, तर्पण, सेवा और भावना को ग्रहण करती है और उसे भक्ति, क्रिया तथा मङ्गल का सूचक बताती है। हठप्रदीपिका इस अनुशासन को योगाभ्यास की आधारभूमि बनाती है; रुद्रयामल उसे तान्त्रिक पूजा और साधक की आन्तरिक पात्रता से जोड़ता है।

यह साम्य प्रत्यक्षतः यह सिद्ध नहीं करता कि एक ग्रन्थ ने दूसरे से श्लोक लिया। समान पद किसी तीसरे स्रोत, मौखिक परम्परा अथवा परिवर्तित पाठ-परिवार से भी आ सकते हैं। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से यह इस लेख का सर्वाधिक ठोस प्रमाण है कि दोनों की योग-भाषा पूर्णतः पृथक् नहीं है।

5.2 गुरु, अभ्यास और मिताहार

दोनों ग्रन्थों में नैतिक सूची अकेली पर्याप्त नहीं मानी गई; उसे गुरु-निर्देश, नियमित अभ्यास और आहार-संयम से जोड़ा गया है। हठप्रदीपिका साधक को गुरु द्वारा बताए मार्ग पर योगाभ्यास करने का निर्देश देती है (1.14) और अत्याहार, अतिप्रयास, प्रजल्प, नियमाग्रह, जनसंग तथा चञ्चलता को योग-विनाशक बताती है (1.15)। इसके विपरीत उत्साह, साहस, धैर्य, तत्त्वज्ञान, निश्चय और जनसंग-परित्याग योग-सिद्धि के साधक हैं (1.16)। मिताहार को यमों में स्थान देना यह दिखाता है कि आहार केवल स्वास्थ्य-सुझाव नहीं, प्राण और मन के अनुशासन का नैतिक पक्ष है। आगे ग्रन्थ स्पष्ट करता है कि सिद्धि शास्त्र-पाठ या वेश से नहीं, क्रिया और निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होती है। रुद्रयामल भी मिताहार, इन्द्रियजय, प्रपञ्च से निवृत्ति, जप और गुरु-सापेक्ष क्रिया पर बल देता है। उसके पटल-प्रसंग में साधक को केवल योग-तकनीक सीखने वाला व्यक्ति नहीं, मन्त्र, पूजा, ध्यान और आचार का संयुक्त अधिकारी माना गया है। यह अन्तर महत्वपूर्ण है: हठप्रदीपिका अपेक्षाकृत विविध सम्प्रदायों द्वारा ग्रहण की जा सकने वाली अभ्यास-संहिता का रूप लेती है, जबकि रुद्रयामल में वही अनुशासन कुलागम और देवता-साधना के विशिष्ट धार्मिक वातावरण में रहता है। फिर भी दोनों का साझा सिद्धान्त है कि योग ज्ञान-वचन से अधिक अनुशासित क्रिया है।

5.3 आसन: संख्या से अधिक वायु-साधना का प्रयोजन

रुद्रयामल के तेईसवें पटल में बद्धपद्मासन तथा विविध आसनों का वर्णन प्राण और वायु के सन्दर्भ में आता है। पाठ कहता है:

**आसनानि शृणुष्वेतद् द्वात्रिंशत्संख्यकानि च।
सव्यापसव्ययोगेन द्विगुणं प्रभवेदिह॥
चतुःषष्ट्यासनानीह वदामि वायुसाधनात्।
द्वात्रिंशद् ग्रन्थिभेदाय कल्पयेद् वायुवृद्धये॥**

(रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 23.34-35)

इन श्लोकों में बत्तीस आसनों के सव्य-अपसव्य प्रयोग से चौंसठ रूप बनने और उन्हें वायु-वृद्धि एवं ग्रन्थिभेद से जोड़ने की बात है। निकटवर्ती श्लोक पद्मासन, बद्धपद्मासन, कार्मुकासन, कुक्कुटासन और खगासन आदि का उल्लेख करते

हैं। कुछ नाम प्रचलित हठयोग-आसनों से मिलते हैं, किन्तु कुछ का स्वरूप संस्करणगत या विशिष्ट तान्त्रिक सन्दर्भ वाला है। इसलिए मात्र नाम-साम्य के आधार पर आधुनिक आसन की आकृति आरोपित करना उचित नहीं है।

हठप्रदीपिका आसन को हठयोग का प्रथम अङ्ग कहती है और उसका फल स्थैर्य, आरोग्य तथा अङ्गलाघव बताती है (हठप्रदीपिका 1.19)। वह स्वस्तिक, गोमुख, वीर, कूर्म, कुक्कुट, धनुर, मत्स्येन्द्र, पश्चिमतान, मयूर और शवासन आदि का वर्णन करने के बाद कहती है कि शिव ने चौरासी आसन बताए, जिनमें सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र चार सारभूत हैं (1.35-36)। सिद्धासन को नाडीशोधन, प्राणस्थैर्य और उन्मनी से जोड़ा गया है (1.40-45)।

दोनों ग्रन्थों में आसन का लक्ष्य आधुनिक अर्थ में शारीरिक प्रदर्शन नहीं है। रुद्रयामल में आसन वायु-साधना और ग्रन्थिभेद की पूर्वभूमि है; हठप्रदीपिका में स्थैर्य और आरोग्य के साथ नाडीशुद्धि, कुण्डलिनी-प्रबोध और उन्मनी का साधन। अन्तर यह है कि रुद्रयामल संख्या और पार्श्व-भेद के साथ व्यापक सूची का संकेत देता है, जबकि हठप्रदीपिका सीमित उपयोगी आसनों का चयन करके सिद्धासन को विशेष प्राथमिकता देती है। इस चयनात्मकता में हठप्रदीपिका का संहिताकरण-स्वभाव स्पष्ट होता है।

5.4 प्राणायाम, नाडी और त्रिवेणी का रूपक

रुद्रयामल प्राणायाम को ब्रह्मज्ञान के मार्ग से जोड़ते हुए सगर्भ और निर्गर्भ दो भेद बताता है। जप और ध्यान से संयुक्त प्राणायाम सगर्भ है; इनके बिना किया गया अभ्यास निर्गर्भ। इसके बाद नासिका में पूरक, कुम्भक और रेचक के तीन लक्षण तथा उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु और शिव बताए गए हैं (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.39-44; त्रिपाठी, 1991, p. 256)। यह वर्गीकरण श्वास-क्रिया को केवल जैव-यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं रहने देता; मन्त्र, ध्यान और देवता से संयुक्त करके उसे आन्तरिक यज्ञ बनाता है।

इड़ा को गङ्गा, पिङ्गला को यमुना और दोनों के मध्य सुषुम्ना को सरस्वती कहकर उनके मिलन को त्रिवेणी-सङ्गम तथा तीर्थराज कहा गया है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.45-47; p. 257)। यह देह को तीर्थ के रूप में पुनर्व्याख्यायित करता है। बाह्य प्रयाग का धार्मिक रूपक योगी के सूक्ष्म शरीर में स्थापित होता है; श्वास का आवागमन तीर्थ-स्नान और आन्तरिक शुद्धि का साधन बनता है।

हठप्रदीपिका में भी आसन-दृढ़ता, इन्द्रियवशता, हित-मिताहार और गुरु-उपदेश के पश्चात् प्राणायाम का विधान है (हठ 2.1)। “चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्” कहकर वायु और चित्त की पारस्परिकता स्थापित की गई है (हठ 2.2)। इड़ा से पूरक और पिङ्गला से रेचक, फिर विपरीत क्रम द्वारा अभ्यास करके नाड़ियों की शुद्धि का विधान है (हठ 2.7-10)। यहाँ देवता-न्यास का विस्तार नहीं, बल्कि क्रम, अभ्यास, मात्रा, नाडीशोधन के लक्षण और सावधानी प्रमुख हैं। सिंह, गज और व्याघ्र को शनैः वश में करने के समान वायु का क्रमिक अभ्यास आवश्यक बताया गया है; अनुचित अभ्यास रोग का कारण हो सकता है (हठ 2.15-18)।

रुद्रयामल में मन्त्रगणना के साथ पूरक-कुम्भक-रेचक का अनुपात भी मिलता है। पूरक में षोडश प्रणव-जप, कुम्भक में चतुःषष्टि और रेचक में द्वात्रिंशत् जप का निर्देश है; नासिका-परिवर्तन के साथ यह क्रम दोहराया जाता है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.59-65)। हठप्रदीपिका वैकल्पिक नासिका-श्वासन और कुम्भकों का तकनीकी विस्तार करती है, पर इस स्थान पर रुद्रयामल-जैसा देवतामय मन्त्र-अनुपात उसका केंद्रीय विन्यास नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि समान श्वास-विधि अलग धार्मिक व्याकरण में रूपान्तरित हो सकती है।

5.5 षट्चक्र, कुण्डलिनी और मध्य-मार्ग

रुद्रयामल पिङ्गला और इड़ा के साथ सुषुम्ना को मुख्य जननी तथा कमल-तन्तु के समान सूक्ष्म बताता है। सुषुम्ना में वज्रा और चित्रिणी नाडी तथा कुण्डलिनी की गति का उल्लेख है। इसके बाद मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—छः पद्मों के साथ डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी/हाकिनी और सम्बन्धित शिव-तत्त्वों की योजना आती है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.50-56; त्रिपाठी, 1991, pp. 257-258)। यहाँ चक्र शरीर-मानचित्र मात्र नहीं; वे देवता, शक्ति, वर्ण, मन्त्र और ध्यान के केन्द्र हैं।

पच्चीसवें पटल में मूल का आकुञ्चन, प्राण-नियमन और कुण्डलिनी-प्रबोधन परस्पर जुड़े हैं: योगी बद्धपद्मासन और योगमुद्रा में वायु को मूल में भरकर चैतन्यस्वरूपिणी कुण्डलिनी को जगाता है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 25.82-83; p. 260)। इस प्रक्रिया में देह के भीतर ऊपर की ओर गति केवल शारीरिक दबाव नहीं, शक्ति-चेतना का उद्बोधन है।

हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश का आरम्भ ही कुण्डलिनी को समस्त योगतन्त्रों का आधार कहकर होता है। गुरु-प्रसाद से उसके जागने पर पद्म और ग्रन्थियाँ भेदित होती हैं, सुषुम्ना राजपथ बनती है और चित्त निरालम्ब होता है (हठ 3.1-5)। महा-मुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धर, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालन को

कुण्डलिनी-जागरण तथा मृत्यु-जय से जोड़ा गया है (हठ 3.6-9)। मूलबन्ध से अपान को ऊपर खींचकर प्राण से मिलाने और उसके ताप से सुप्त कुण्डलिनी को जागृत करने का विवरण मिलता है (हठ 3.61-69)।

समानता यह है कि दोनों में कुण्डलिनी, मध्य-नाड़ी, प्राण और ग्रन्थिभेद एक ही साधनात्मक तन्त्र के भाग हैं। भिन्नता यह है कि रुद्रयामल चक्रों के देवता-शक्ति-संबंध का अपेक्षाकृत विस्तृत ध्यान-विधान देता है; हठप्रदीपिका मुद्रा और बन्ध की कार्यप्रणाली पर अधिक केन्द्रित है। Olga Serbaeva Saraogi ने तान्त्रिक परम्पराओं में कुण्डलिनी-योग के रूपान्तरण का अध्ययन करते हुए दिखाया है कि सूक्ष्म-शरीर की योजनाएँ एक समान स्थिर मानचित्र नहीं, बल्कि विशिष्ट पाठ और सम्प्रदाय के अनुसार बदलती हैं (Saraogi, 2020, pp. 102-119)। रुद्रयामल और हठप्रदीपिका की तुलना भी इसी पाठ-विशिष्टता के साथ करनी चाहिए।

5.6 मुद्रा, बन्ध और मन्त्रात्मक विशेषता

हठप्रदीपिका की संरचना में मुद्रा और बन्ध स्वतंत्र तथा अत्यन्त विस्तृत तृतीय उपदेश का विषय हैं। उड्डीयान से प्राण सुषुम्ना में ऊपर उठता है; मूलबन्ध प्राण और अपान को एक करता है; जालन्धर कण्ठ-प्रदेश में प्रवाह को रोकता है; और बन्धत्रय वायु को पश्चिम-पथ में ले जाता है (हठ 3.55-75)। इस तकनीकी क्रम का लक्ष्य कुण्डलिनी-जागरण, अमृत-संरक्षण, बिन्दुस्थैर्य और अन्ततः राजयोग है।

रुद्रयामल के चयनित पटलों में 'मुद्रा' का अर्थ कभी विशिष्ट शारीरिक स्थिति, कभी नाड़ी-चालन और कभी तान्त्रिक विधि के व्यापक अर्थ में आता है। मूलाकुञ्चन, बद्धपद्मासन, योगमुद्रा, तालु-जिह्वा-संबंध और सूक्ष्म वायु-पान जैसे प्रयोग हठयोग की बन्ध-मुद्रा परम्परा से तुलनीय हैं, पर वे मन्त्र-जप और देवी-साधना से पृथक् नहीं होते। इसलिए रुद्रयामल को हठप्रदीपिका की आधुनिक तकनीकी श्रेणियों में पूर्णतः बाँटना उसके तान्त्रिक अर्थ को कम कर देगा। उचित निष्कर्ष यह है कि दोनों ग्रन्थ देह और वायु पर कार्य करने वाली साझा क्रियाओं को जानते हैं, पर उनकी वर्गीकरण-पद्धति अलग है।

रुद्रयामल की सबसे स्पष्ट विशिष्टता 'सगर्भ' प्राणायाम है। मन्त्र और ध्यान श्वास के साथ चलते हैं; पूरक, कुम्भक और रेचक देवताओं से अधिष्ठित हैं; नाड़ियाँ पवित्र नदियाँ हैं; चक्र देवताओं और शक्तियों के स्थान हैं। हठप्रदीपिका में भी आदिनाथ, गुरु, शक्ति, अमृत, शिव और शाम्भवी जैसे तान्त्रिक पद प्रचुर हैं, अतः उसे धर्मनिरपेक्ष व्यायाम-पुस्तिका मानना भूल होगी। फिर भी उसका प्रस्तुतीकरण तुलनात्मक रूप से सम्प्रदायातीत और तकनीकी है। Mark Singleton ने आरम्भिक हठयोग की इसी अनुकूलनशीलता को उसकी व्यापक स्वीकृति का एक कारण माना है (Singleton, 2020, pp. 120-129)।

5.7 सिद्धि, समाधि और मोक्ष

रुद्रयामल के चौबीसवें पटल में अष्टाङ्ग के प्रत्येक चरण का फल क्रमशः बताया गया है। धारणा से वायु-सिद्धि और अष्टसिद्धि, ध्यान से मोक्ष तथा समाधि से महाज्ञान का संकेत है (रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 24.138-145; त्रिपाठी, 1991, p. 250)। पच्चीसवें पटल में निरन्तर योगाभ्यास को कुण्डलिनी-साधना, मन्त्रसिद्धि और मोक्ष से जोड़ा गया है: "योगयोगाद् भवेन्मोक्ष" तथा "योगाभ्यासाद् भवेन्मुक्तः" जैसे कथन योग को साधनात्मक केंद्र बनाते हैं (25.70-79; pp. 259-260)। यहाँ सिद्धि और मोक्ष विरोधी नहीं, बल्कि एक सोपान-क्रम में दिखाई देते हैं; फिर भी मोक्ष, ब्रह्मज्ञान और शिव-शक्ति-सामरस्य उच्चतर फल हैं।

हठप्रदीपिका भी सिद्धियों की भाषा का प्रयोग करती है। मुद्रा को अष्टैश्वर्यप्रद और कुण्डलिनी-अभ्यास को सिद्धि एवं कालजय से सम्बद्ध बताया गया है (3.8, 3.120-130)। पर ग्रन्थ का आरम्भिक और अंतिम ढाँचा राजयोग तथा समाधि की ओर निर्देशित है। चतुर्थ उपदेश समाधि को आत्मा और मन की एकता, प्राण और मन के लय तथा जीवात्मा-परमात्मा के साम्य के रूप में परिभाषित करता है (4.5-7)। "प्राणो मनो द्वयमिदं विलयं नयेद्यो मोक्षं स गच्छति" कथन में प्राण-मन-लय को मोक्ष का निर्णायक साधन कहा गया है (4.15)।

दोनों ग्रन्थ साधक को केवल चमत्कार-संग्रह की ओर नहीं ले जाते। पूर्व-आधुनिक योग-साहित्य में सिद्धि साधना की प्रभावकारिता, देह और इन्द्रियों पर अधिकार तथा आध्यात्मिक प्रगति का संकेत हो सकती है; उसका आधुनिक भौतिक विज्ञान की कसौटी पर स्वतः सत्यापन नहीं माना जा सकता (Mallinson, 2011b, pp. 327-344)। तुलनात्मक निष्कर्ष यह है कि रुद्रयामल में सिद्धि का तान्त्रिक-मन्त्रात्मक क्षेत्र व्यापक है, जबकि हठप्रदीपिका सिद्धि को कुण्डलिनी, वायु और मुद्रा की उपलब्धि से जोड़ते हुए समाधि-राजयोग के अधीन रखती है।

6. तुलनात्मक सारणी

तुलनात्मक आधार	रुद्रयामल उत्तरतन्त्र	हठप्रदीपिका	प्रमुख निष्कर्ष
परम लक्ष्य	सिद्धि, ब्रह्मज्ञान, शिव/शक्ति-साक्षात्कार और मोक्ष	हठ द्वारा राजयोग, मनोलाय, समाधि और मोक्ष	दोनों में मुक्ति सर्वोच्च; रुद्रयामल में मन्त्र-देवता का अधिक समावेश
साधना-संरचना	तान्त्रिक अष्टाङ्ग, पूजा, जप और ध्यान से संयुक्त	चार उपदेश: आसन, प्राणायाम, मुद्रा, समाधि	रुद्रयामल समन्वित अनुष्ठान; हठप्रदीपिका क्रमबद्ध तकनीकी संहिता
यम-नियम	द्वादश यम और चतुर्दश नियम	दस यम और दस नियम	उल्लेखनीय शब्दगत साम्य; रुद्रयामल में सेवा, तर्पण और भावना का विस्तार
आसन	बत्तीस के सव्य-अपसव्य से चौंसठ; वायु-वृद्धि और ग्रन्थिभेद	चौरासी में चार सारभूत; स्थैर्य, आरोग्य और नाड़ीशोधन	संख्या भिन्न, पर आसन का प्राण-केंद्रित प्रयोजन समान
प्राणायाम	सगर्भ/निर्गर्भ; मन्त्रगणना; देवता-अधिष्ठान	नाड़ीशोधन, आठ कुम्भक, क्रमिक वायु-नियमन	रुद्रयामल में अनुष्ठानात्मकता; हठप्रदीपिका में तकनीकी वर्गीकरण
नाड़ी	इड़ा-गङ्गा, पिङ्गला-यमुना, सुषुम्ना-सरस्वती; वज्रा-चित्रिणी	इड़ा-पिङ्गला द्वारा शोधन; सुषुम्ना मध्यपथ	मध्य-नाड़ी दोनों में निर्णायक; रुद्रयामल का तीर्थरूपक अधिक स्पष्ट
कुण्डलिनी-चक्र	षट्चक्र, देवता और डाकिनी आदि शक्तियाँ	कुण्डलिनी सभी योगतन्त्रों का आधार; मुद्रा-बन्ध से जागरण	साझा शक्ति-मॉडल, किन्तु रुद्रयामल में देवतामय चक्र-ध्यान अधिक विस्तृत
मुद्रा-बन्ध	योगमुद्रा, मूलाकुञ्चन, तालु-जिह्वा और वायु-साधना मन्त्र से संयुक्त	दस मुद्राएँ और बन्धों का विस्तृत तकनीकी क्रम	हठप्रदीपिका का वर्गीकरण अधिक स्पष्ट; रुद्रयामल का प्रयोग तान्त्रिक संदर्भ में
सिद्धि और मोक्ष	साधना-फल के रूप में सिद्धि; ध्यान, ब्रह्मज्ञान और योग से मोक्ष	मुद्रा-कुण्डलिनी से सिद्धि; राजयोग-समाधि से मोक्ष	सिद्धि मार्ग का फल, मोक्ष व्यापक साध्य

सारणी का आधार: रुद्रयामल उत्तरतन्त्र 23.23-45; 24.132-145; 25.20-88 तथा हठप्रदीपिका 1.1-70; 2.1-78; 3.1-130; 4.1-114।

चर्चा

- तुलना से प्रथम तथ्य यह सामने आता है कि 'तन्त्र' और 'हठयोग' को दो असम्बद्ध विभागों में नहीं रखा जा सकता। रुद्रयामल की योग-पद्धति में आसन और श्वास मन्त्र, शक्ति और देवता से जुड़े हैं; हठप्रदीपिका की भाषा में भी आदिनाथ, कुण्डलिनी, अमृत, बिन्दु और शाम्भवी जैसी तान्त्रिक अवधारणाएँ मूलभूत हैं। आधुनिक शोध ने हठयोग की आरम्भिक देह-प्रक्रियाओं को बौद्ध और शैव-शाक्त तान्त्रिक परिवेशों से जटिल अन्तःक्रिया में विकसित माना है (Birch, 2011; Mallinson and Szántó, 2021)। अतः रुद्रयामल का अध्ययन हठयोग की 'तान्त्रिक पृष्ठभूमि' को ठोस पाठ-सामग्री देता है।

2. दूसरा तथ्य संगठन का अन्तर है। रुद्रयामल विश्वकोशात्मक तन्त्र की भाँति मन्त्र, पूजा, कुलाचार, चक्र और योग को अनेक पटलों में वितरित करता है। उसकी योग-सामग्री को समझने के लिए पाठक को अलग-अलग प्रसंग जोड़ने पड़ते हैं। हठप्रदीपिका पूर्ववर्ती सामग्री चुनकर साधक के लिए एक प्रगामी क्रम बनाती है: अनुशासन और आसन से नाड़ीशोधन; प्राणायाम से कुण्डलिनी; मुद्रा-बन्ध से मध्य-पथ; और अन्त में नाद तथा समाधि। यही संक्षिप्त संहिताकरण उसके व्यापक प्रभाव का कारण रहा होगा, यद्यपि यह एक ऐतिहासिक व्याख्या है, प्रत्यक्ष पाठ-कथन नहीं।
3. तीसरा तथ्य यह है कि दोनों में देह त्याज्य नहीं, रूपान्तरण का साधन है। आसन वायु को साधता है, श्वास चित्त को स्थिर करता है, मध्य-नाड़ी चेतना की दिशा बदलती है और कुण्डलिनी साधक को उच्च अवस्था की ओर ले जाती है। David Gordon White ने मध्यकालीन सिद्ध परम्पराओं में देह को सूक्ष्म शक्तियों और अमरता की साधना का क्षेत्र बताया है (White, 1996)। रुद्रयामल की त्रिवेणी, षट्चक्र और देवी-योजना तथा हठप्रदीपिका का बिन्दु, अमृत और सुषुम्ना-विज्ञान इसी व्यापक देह-साधना के भिन्न रूप हैं।
4. चौथा तथ्य यह है कि रुद्रयामल को हठप्रदीपिका का निश्चित 'पूर्वग्रन्थ' या 'अगला भाग' कहना वर्तमान साक्ष्य से सम्भव नहीं है। रुद्रयामल नाम से उपलब्ध पाठों और पाण्डुलिपियों में भेद है; त्रिपाठी-सम्पादित संस्करण स्वयं जीवानन्दीय पाठ से पटल और श्लोक-संख्या में अन्तर स्वीकार करता है। हठप्रदीपिका की भी अनेक पाठ-परम्पराएँ हैं और नवीन आलोचनात्मक संस्करण ने उसके पाण्डुलिपि-वैविध्य को उजागर किया है (Mallinson et al., 2024)। इसलिए समान श्लोक-समूहों का निष्कर्ष 'साझा पाठ-संस्कृति अथवा अन्तर्पाठीय सम्बन्ध' तक सीमित रखना अधिक वैज्ञानिक है। प्रत्यक्ष उधार की दिशा स्थापित करने के लिए पुरानी पाण्डुलिपियों, पाठान्तरों और उद्धरण-परम्परा का पृथक् आलोचनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

प्रमुख निष्कर्ष

1. रुद्रयामल के तेईसवें से पच्चीसवें पटल में हठयोग-सदृश साधना का पर्याप्त और सुसम्बद्ध पाठ-साक्ष्य उपलब्ध है।
2. रुद्रयामल अष्टाङ्गीय शब्दावली को स्वीकार करता है, पर उसके फलों को तान्त्रिक पूजा, सिद्धि, श्रीविद्या, सहस्रार और मोक्ष से जोड़ता है।
3. रुद्रयामल के द्वादश यम और चतुर्दश नियम तथा हठप्रदीपिका के दस यम-दस नियम में निकट शब्दगत साम्य है; रुद्रयामल सूची को अनुष्ठान और भक्ति की दिशा में विस्तृत करता है।
4. दोनों ग्रन्थों में आसन का प्रमुख प्रयोजन देहस्थैर्य के साथ वायु, नाड़ी और ग्रन्थि पर कार्य करना है। आसन-संख्या भिन्न होने पर भी उसका सूक्ष्म-शरीरपरक लक्ष्य समान है।
5. रुद्रयामल प्राणायाम को सगर्भ-निर्गर्भ, मन्त्र-जप, देवता और त्रिवेणी-रूपक से व्याख्यायित करता है; हठप्रदीपिका नाड़ीशोधन, कुम्भक और सावधानी का अधिक व्यवस्थित तकनीकी विवरण देती है।
6. इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना और कुण्डलिनी दोनों की साधना-रचना के केन्द्र में हैं। रुद्रयामल चक्र-देवता-शक्ति की योजना को अधिक विकसित करता है, जबकि हठप्रदीपिका मुद्रा और बन्ध को विस्तार देती है।
7. दोनों ग्रन्थ सिद्धियों को स्वीकार करते हैं, किन्तु उन्हें व्यापक समाधि और मोक्ष-लक्ष्य के अधीन समझा जा सकता है।
8. पाठ-काल और संस्करणगत अनिश्चितताओं के कारण प्रत्यक्ष प्रभाव की दिशा अभी सिद्ध नहीं है। सबसे सुरक्षित निष्कर्ष साझा योग-तान्त्रिक शब्दावली, अन्तर्पाठीय साम्य और भिन्न प्रणालीकरण का है।

उपसंहार

रुद्रयामल उत्तरतन्त्र में हठयोग के तत्त्व आकस्मिक अथवा गौण उल्लेख नहीं हैं। आसन-संख्या, वायु-साधना, द्वादश यम, चतुर्दश नियम, सगर्भ-निर्गर्भ प्राणायाम, पूरक-कुम्भक-रेचक, इड़ा-पिङ्गला-सुषुम्ना, षट्चक्र, कुण्डलिनी और मोक्ष—इन सबको मिलाकर एक विशिष्ट योग-तान्त्रिक प्रणाली उभरती है। इसका केंद्र शरीर को स्वस्थ रखने से आगे बढ़कर देह को मन्त्र, प्राण और चेतना के रूपान्तरण का क्षेत्र बनाना है।

हठप्रदीपिका इसी व्यापक साधना-जगत से सम्बद्ध अनेक तत्त्वों को अधिक संक्षिप्त और अभ्यासोन्मुख क्रम देती है। वह आसन से आरम्भ करके प्राणायाम, मुद्रा, कुण्डलिनी और समाधि तक जाती है तथा हठ को राजयोग का सोपान बनाती है। रुद्रयामल में वही यात्रा देवता, मन्त्र, पूजा और चक्र-शक्तियों की तान्त्रिक भाषा में व्यक्त होती है। अतः दोनों का सम्बन्ध समानता या भिन्नता की सरल द्वैत-रेखा से नहीं, बल्कि साझा तकनीकों के अलग धार्मिक विन्यास से समझना चाहिए।

इस अध्ययन का मुख्य योगदान यह है कि यह रुद्रयामल को न तो चमत्कारिक दावों का संग्रह मानता है और न हठप्रदीपिका का प्रमाणहीन पूर्वरूप। यह मूल श्लोकों के आधार पर उन क्षेत्रों की पहचान करता है जहाँ दोनों ग्रन्थ एक-दूसरे को प्रकाशित करते हैं। भविष्य में विभिन्न रुद्रयामल-पाण्डुलिपियों, जीवनन्दीय संस्करण और सम्पूर्णानन्द संस्करण के तेईसवें-पच्चीसवें पटलों का आलोचनात्मक मिलान किया जाए तो हठयोग और तन्त्र के ऐतिहासिक सम्बन्ध पर अधिक निर्णायक निष्कर्ष सम्भव होंगे।

सन्दर्भ-सूची

प्राथमिक स्रोत

1. त्रिपाठी, श्रीरामप्रसाद (सम्पा.). (1991). *रुद्रयामलम् (उत्तरतन्त्रम्), प्रथम भाग*. योगतन्त्र-ग्रन्थमाला, सप्तम पुष्प, द्वितीय संस्करण. वाराणसी: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।
2. स्वात्माराम. (1998). *Hathapradipika of Svatmarama* (Original Text, Transliteration, Translation and Notes), ed. Swami Digambarji and Pt. Raghunatha Shastri Kokaje, 2nd ed. Lonavla: Kaivalyadhama S.M.Y.M. Samiti. (प्रथम संस्करण 1970)।
3. Mallinson, James, Jason Birch, Jürgen Hanneder, Mitsuyo Demoto, and Nils Jacob Liersch, eds. (2024). *Haṭhapradīpikā: Digital Critical Edition and Translation*. Oxford and Marburg: Light on Haṭha Yoga Project. <https://yoga.ames.ox.ac.uk/hp/>

द्वितीयक स्रोत

4. Birch, Jason. (2011). "The Meaning of Haṭha in Early Haṭhayoga." *Journal of the American Oriental Society*, 131(4), 527-554. <https://doi.org/10.2307/41440511>
5. Flood, Gavin. (2006). *The Tantric Body: The Secret Tradition of Hindu Religion*. London: I.B. Tauris.
6. Mallinson, James. (2011a). "Haṭha Yoga." In Knut A. Jacobsen et al. (eds.), *Brill's Encyclopedia of Hinduism*, Vol. 3, 770-781. Leiden: Brill.
7. Mallinson, James. (2011b). "Siddhi and Mahāsiddhi in Early Haṭhayoga." In Knut A. Jacobsen (ed.), *Yoga Powers: Extraordinary Capacities Attained Through Meditation and Concentration*, 327-344. Leiden: Brill.
8. Mallinson, James. (2014). "Haṭhayoga's Philosophy: A Fortuitous Union of Non-Dualities." *Journal of Indian Philosophy*, 42, 225-247. <https://doi.org/10.1007/s10781-013-9217-0>
9. Mallinson, James. (2016). "Śāktism and Haṭhayoga." In Bjarne Wernicke-Olesen (ed.), *Goddess Traditions in Tantric Hinduism: History, Practice and Doctrine*, 109-140. London and New York: Routledge.
10. Mallinson, James, and Mark Singleton. (2017). *Roots of Yoga*. London: Penguin Classics.
11. Mallinson, James, and Péter-Dániel Szántó. (2021). *The Amṛtasiddhi and Amṛtasiddhimūla: The Earliest Texts of the Haṭhayoga Tradition*. Collection Indologie 150, Haṭha Yoga Series 2. Pondicherry: Institut Français de Pondichéry and École Française d'Extrême-Orient.
12. Saraogi, Olga Serbaeva. (2020). "Tantric Transformations of Yoga: Kuṇḍalinī in the Ninth to Tenth Century." In Suzanne Newcombe and Karen O'Brien-Kop (eds.), *Routledge Handbook of Yoga and Meditation Studies*, 102-119. Abingdon and New York: Routledge.
13. Singleton, Mark. (2020). "Early Haṭhayoga." In Suzanne Newcombe and Karen O'Brien-Kop (eds.), *Routledge Handbook of Yoga and Meditation Studies*, 120-129. Abingdon and New York: Routledge.
14. White, David Gordon. (1996). *The Alchemical Body: Siddha Traditions in Medieval India*. Chicago: University of Chicago Press.